

शिक्षा

चॉक एंड डस्टर के इर्द-गिर्द

पवन सिन्हा*

शिक्षा के संदर्भ में चॉक एंड डस्टर का उल्लेख हो तो केवल स्कूल या कॉलेज के चॉक एंड डस्टर की तस्वीर ही आँखों के सामने झट से घूम जाती है। 'झट से' बहुत महत्वपूर्ण संकेत है जो यह बताता है कि हमारी स्वयं की अवधारणाएँ कितनी 'बँधी हुई' और 'कितनी संकीर्ण' हैं। यह स्वीकारोक्ति सहज नहीं है, लेकिन सत्य तो है ही। इसी चॉक एंड डस्टर के इर्द-गिर्द शिक्षा की समस्त अवधारणाएँ स्वतः ही 'खुलती' हैं जब एक-एक करके, परत-दर-परत शिक्षा के अर्थ उद्घाटित होते चलते हैं। इस अर्थ में यह संज्ञान होना आवश्यक है कि शिक्षा, शिक्षण-प्रशिक्षण, सीखना, स्कूल, कक्षाएँ... और सिनेमा भी इस शिक्षा की असलियत को उद्घाटित करता है। भारत जैसे विविधता भरे देश में ऐसे बच्चे भी हैं, जिनके जीवन में स्कूल-कक्षा वाले चॉक एंड डस्टर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं और एक तरह का डिजिटल विभेद उन्हें परेशान करता है। और हमें भी। मोबाइल या कंप्यूटर पर जो चॉक एंड डस्टर का 'खेल' खेला जाता है, आदिवासी बच्चे उससे भी वंचित रह जाते हैं। क्या करें? है कोई समाधान? प्रस्तुत लेख चॉक एंड डस्टर के बहाने शिक्षा की इन्हीं इर्द-गिर्द वाली नैसर्गिक अवधारणाओं को आलोचनात्मक रूप से समझने, गुनने और क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा, शिक्षण और प्रशिक्षण— ये तीनों ही शब्द समान प्रतीत होते हैं... 'प्रतीत' होते हैं, लेकिन एक समान हैं नहीं, क्योंकि इनमें अर्थ की दृष्टि से बहुत गहरा अंतर है। यह अंतर इनके स्वभाव, प्रकृति और उद्देश्य को लेकर है, हालाँकि वामन शिवराम आपटे के *संस्कृत-हिंदी कोश* में 'शिक्षा' के विभिन्न अर्थों का उल्लेख करते हुए 'अध्यापन', 'शिक्षण', 'प्रशिक्षण' को भी शामिल किया गया है। हम जानते हैं कि शिक्षा स्वयं में एक बृहद संकल्पना है और उसमें जीवन का हर आयाम शामिल है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जीने का, जीवन का मौलिक अधिकार देता है और जीवन भी कैसा, जो

गरिमामय हो, यानी जीवन जीने में गुणवत्ता का होना जरूरी है, वरना 'बहुतों का जीवन तो फुटपाथ पर ही बीत रहा है।' जीवन के इस अधिकार के साथ ही अनुच्छेद 21A शिक्षा का मौलिक अधिकार भी देता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और 21A—दोनों की 'संगति' संगतकार की तरह है—यह दोनों एक-दूसरे को निरंतर प्रभावित करते हैं। एक में होने वाला 'बेताला-पन' दूसरे के 'सुर' और 'ताल' को बिगाड़ देता है। संगीत का जीवन और जीवन का संगीत-दोनों में संगतकार और उनकी अदायगी बहुत महत्वपूर्ण होती है। जीवन और शिक्षा में भी यही संबंध दृष्टिगत होता है। शिक्षा जीवन

* एसोसिएट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरू, दिल्ली विश्वविद्यालय

को प्रभावित करती है और जीवन शिक्षा को। सुर और ताल से पगी शिक्षा मानव जीवन में ऐसा 'राग' उत्पन्न करती है कि व्यक्ति समरसता और आनंद का अनुभव करता है। यह शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली एक प्रक्रिया है जो जीवन को न केवल उन्नत बनाती है बल्कि उत्कृष्ट भी बनाती है।

शिक्षण और प्रशिक्षण

अब सवाल आता है— अध्यापन या शिक्षण और प्रशिक्षण का। वामन शिवराम आप्टे के *संस्कृत-हिंदी कोश* में 'शिक्षणम्' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है— 'शिक्ष्+त्युट्'— सीखना, अधिगम, ज्ञानार्जन, अध्यापन और सिखाना। इसी संस्कृत शब्दकोश के अनुसार 'अध्यापन' का अर्थ है— 'पढ़ाना', 'सिखाना', 'व्याख्यान देना।' इसका यह अर्थ है कि शिक्षण में सीखना-सिखाना दोनों ही शामिल हैं। यदि गहराई से देखें, तो यह समझ में आता है कि सिखाने के लिए स्वयं सीखना भी ज़रूरी है। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि कोई किसी को कुछ सिखा नहीं सकता सीखना स्वयं है और अपने 'अंदाज़' के साथ सीखना है। अगर हम किसी को भी 'कुछ भी सिखा सकते' तो कक्षा के सभी बच्चे और समाज के सभी सदस्य 'वह सब कुछ सीख जाते, जो सिखाया या सिखाने का प्रयास किया जा रहा है। मनोविज्ञान का सिद्धांत ताकीद भी करता है कि बच्चों में व्यक्तिगत भिन्नता होती है, इसलिए हर बच्चा अपने आप में विलक्षण है, अलग है और विशिष्ट है। हर बच्चे का स्वभाव, उसकी प्रकृति, उसके दोस्त, उसकी खूबियाँ, उसकी खामियाँ, उसकी पसंद-नापसंद, उसका दृष्टिकोण, उसके सोचने-समझने का अंदाज़, तरीका और सलीका... सब अलग है, क्योंकि उसका परिवेश, उसकी परवरिश, उसका अनुभव, उसकी संस्कृति, उसका समाज सब

अलग है और उसके 'माता-पिता' भी तो अलग ही हैं। हम केवल सीखने के लिए प्रेरित कर सकते हैं, सीखने के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर सकते हैं... सीखने की जिम्मेदारी सीखने वाले पर अपेक्षाकृत अधिक है। यह भी गौरतलब है कि हम किसी को सब कुछ नहीं सिखा सकते केवल सीखने की कला, सीखने के हुनर और सीखने में मदद कर सकते हैं। हमें बच्चों की यह सीखने में मदद करना है कि 'सीखा कैसे जाता है।' तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों सीखने की यात्रा के सहगामी होते हैं और एक अच्छा शिक्षक वही होता है जो स्वयं सीखना बंद नहीं करता। जो आज है, वह कल नहीं होगा और जो कल होगा, वह निकट भविष्य में नहीं होगा... तो सीखने की प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भले ही शिक्षा में ये तीनों बातें शामिल हों लेकिन इनकी जिम्मेदारी सीखने वाले पर सबसे ज़्यादा रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चे यानी सीखने वाले की क्षमता, स्तर और अंदाज़ को समझा जाए। अब अगर हम प्रशिक्षण के बारे में गहराई से विचार करते हैं तो एक दृष्टिकोण कहता है कि यह शब्द मनुष्य या मानव के शिक्षण के संदर्भ में 'कुछ' खटकता है। कारण? प्रशिक्षण का अंग्रेज़ी में शब्द है—ट्रेनिंग। और ट्रेनिंग जैसे शब्द का प्रयोग जानवरों को सिखाने के लिए किया जाता है। मानव या मनुष्य के संदर्भ में शिक्षण शब्द या शिक्षा शब्द ही अधिक उपयुक्त लगता है। इस बारे में दूसरा दृष्टिकोण कहता है कि प्रशिक्षण में हालाँकि शिक्षण शब्द भी जुड़ा है और अगर 'प्र' उपसर्ग का विवेचन किया जाये तो उसका अर्थ होता है—अधिक, आगे, उत्कृष्ट। अगर

इस दृष्टिकोण से प्रशिक्षण को देखें तो यह खटकता नहीं है। इस अर्थ में प्रशिक्षण का अर्थ हुआ अलग है— अधिक शिक्षण, उत्कृष्ट शिक्षण। समस्या यह है कि शब्द जिस समय में, जिस अर्थ में प्रयुक्त होते थे, कालांतर में उन शब्दों के प्रयोग या प्रयोग के प्रचलन में अंतर आ गया और फिर वह शब्द अपना अर्थ-संकोच कर लेता है। शिक्षा में शिक्षण तो है ही, प्रशिक्षण में वह उत्कृष्टता की माँग करता है। शिक्षण, अध्यापन और प्रशिक्षण में शिक्षा-शास्त्र को बच्चों के परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। जैसे बच्चे— वैसा शिक्षण, वैसी प्रक्रिया और वैसा अंदाज़। यह अंदाज़ शिक्षक वर्ग से बहुत सारी अपेक्षाएँ रखता है और सबसे ज़्यादा यह कि हम बच्चे को समझें। शिक्षा की समस्त प्रक्रियाएँ बच्चे के इर्द-गिर्द ही घूमती हैं। हमारे समस्त प्रयासों की धुरी बच्चा है और बच्चा ही होना चाहिए। लेकिन परिवार, शिक्षक, शाला, समाज और नीति-निर्माता बच्चों के प्रति अपनी इस जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हैं, क्योंकि बच्चों की शिक्षा हम सबकी साझी जिम्मेदारी है।

वामन शिवराम आपटे के *संस्कृत-हिंदी कोश* में शिक्षा के विभिन्न अर्थों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसने शिक्षा के भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनेक आयामों को उद्घाटित किया और शिक्षा की विस्तृत विवेचना की। वामन शिवराम आपटे के *संस्कृत-हिंदी कोश* में 'शिक्षा' का संबंध 'शक्ति' से भी है। यह बात बेहद महत्वपूर्ण है कि जो शिक्षा बच्चों को आवाज़ उठाने की ताकत नहीं देती उसे कहीं-न-कहीं यह डर होता है ये 'साहसी बच्चे' उनके ही विरुद्ध आवाज़ न उठाने लग जाएँ इसका अर्थ यह है कि शिक्षा में वह ताकत या शक्ति होती है जो 'कुछ का कुछ' कर दे या फिर तख्ता पलट

दे। अब सवाल उठता है कि यह शक्ति क्या है और इस शक्ति का प्रस्फुटन कैसे होता होता है? दरअसल यह शक्ति है— तर्क की, ज्ञान की और विवेक की। जिसके पास भी ये कुशलताएँ या क्षमताएँ होंगी, वह स्वयं तो शक्तिशाली होगा ही, साथ ही दूसरों को शक्तिशाली बनाने की कोशिश भी करेगा, जिससे सुव्यवस्था बनी रहे। तर्क तो तर्क है उसकी काट तर्क से ही होती है और तर्क के लिए ज्ञान कि ज़रूरत होती है। लेकिन यह ज्ञान कौन सा ज्ञान है? कैसा ज्ञान है? यह प्रामाणिक ज्ञान है, कोरी कल्पना या मिथ्या नहीं है। यह ज्ञान स्व-अनुभूत है या दूसरों के अनुभव का हिस्सा है? यह ज्ञान अनुभव का हिस्सा तो है, फिर चाहे वह स्व-अनुभूत हो या दूसरों द्वारा अनुभूत हो। हम दूसरों के अनुभव का भी लाभ ले सकते हैं और उसे अपना अनुभव बना सकते हैं। एक गुरु जब अपने शिष्यों के साथ अपने अनुभवों को साझा करता है तो फिर वे अनुभव शिष्यों के अनुभव का हिस्सा बन जाते हैं। तो यह ज्ञान और तर्क की शक्ति है इतना तो तय हो गया। अब दूसरा सवाल यह कि शक्ति प्रस्फुटित कैसे होती है? इसके लिए निरंतर चिंतन और विश्लेषण की ज़रूरत होती है। जब हम कोई बात सुनते हैं या कोई घटना देखते हैं तो हमारे मन-मस्तिष्क में उसका विश्लेषण निरंतर चलता रहता है और हम अपने मत का निर्धारण भी लगातार करते चलते हैं। किसी बात या किसी प्रतिक्रिया से हम सहमत होते हैं तो किसी से नहीं। यह 'हाँ' और 'ना' का निर्धारण कौन करता है? 'हम'। हम कौन? हम है— हमारी सोच, चिंतन का स्तर, हमारा अध्ययन और अनुभव। अब सवाल उठता है कि हाँ या ना के निर्धारण में कौन सबसे पहले हैं और कौन बाद में? सोच या अनुभव? यह तय करना अभी मुश्किल है, क्योंकि इसके बारे में

अभी और गहराई चाहिए। सोच अनुभव को आकार देती है या अनुभव सोच को गढ़ता है? शायद अनुभव सोच को आकार देता है, उसे गढ़ता है। वह क्यों? वह इसलिए, क्योंकि जब एक ही तरह के अनुभव लगातार होते हैं तो हमारी सोच वैसी बनती चली जाती है। अकसर देखने में आता है कि अभिजात्य वर्ग के बच्चे अपना अलग गुट बनाकर रहते हैं और दूसरे बच्चों को कमतर मानते हैं तो ये अनुभव इस सोच को विकसित करते हैं कि अभिजात्य वर्ग के लोग 'कुंठा' (श्रेष्ठता का अभिमान) के शिकार हैं, वे अहंकारी और स्वार्थी हैं और उनमें छोटे-बड़े का भेदभाव है। उनके लिए पद, पैसा ही सर्वोपरि है, मानवीय मूल्य कुछ भी नहीं। इस तरह हमारे अनुभवों ने हमारी सोच विकसित कर दी और इस 'सोच' की 'लपेट' में वह व्यक्ति भी आ गया जो अभिजात्य वर्ग का तो है लेकिन उनके जैसा नहीं है वह— बेहद विनम्र, बेहद मिलनसार है। लेकिन हमारी सोच उस भले व्यक्ति को भी कठघरे में खड़ा कर देती है। इस तरह से सोच, चिंतन, तर्क सब भीतर है, उसे अभिव्यक्त होने के लिए 'स्थान' चाहिए, ताकि वह 'विस्तार ले सके', उसे 'हवा' चाहिए कि वह 'भड़क' सके और उसे खुराक या खाद चाहिए ताकि वह बढ़ सके। शक्ति के प्रस्फुटन के लिए अवसर और संवाद चाहिए। हमने अपने बच्चों और युवाओं को शिक्षा की यही शक्ति नहीं दी, 'अनुभव' से 'आंदोलन' की यात्रा प्रशस्त नहीं की... डर है कि ये कहीं ये अन्याय के विरुद्ध खड़े न हो जाएँ।

चॉक एंड डस्टर और चॉक एन डस्टर

चॉक एंड डस्टर देखे हुए मुद्दा हो गई और फ़िलहाल के जीवन में उस चॉक एंड डस्टर की शून्यता का एहसास हर समय रहता है। लेकिन एक चॉक एन डस्टर सदा मेरे

चेतन स्तर पर रहती है और मेरे शिक्षक मन को सदा उद्वेलित करती है। वस्तुतः पहला चॉक एंड डस्टर स्कूल और महाविद्यालय की 'खाली' कक्षाओं से जुड़ा है और दूसरा चॉक एन डस्टर विद्यालयी व्यवस्थाओं के 'खोखलेपन' से जुड़ा है। दरअसल यह एक फ़िल्म है जो हृदय और बुद्धि दोनों पर एक साथ प्रहार करती है। पहला चॉक एंड डस्टर कोविड-19 वैश्विक महामारी के कारण खाली पड़े महाविद्यालय और कक्षाओं के संदर्भ में है, जो फ़िलहाल समय की माँग के कारण ऑनलाइन में तब्दील हो गए हैं। दूसरी चॉक एन डस्टर एक मार्मिक फ़िल्म है जो शिक्षा जगत की सच्चाई और शिक्षा के व्यवसाय बन जाने की कहानी कहती है। यह फ़िल्म एक प्राइवेट स्कूल के भीतर घटने वाली घटनाओं को जिस तरह से प्रस्तुत करती है उससे कई अहम सवाल उठ खड़े होते हैं। फ़िल्म में एक संवेदनशील और ईमानदार प्राचार्या इंदु शास्त्री से स्कूल के सभी सदस्य प्रसन्न हैं। लेकिन स्कूल के मैनेजर, जो विदेश से 'कोई' पढ़ाई करके लौटे हैं (शिक्षा की पढ़ाई नहीं), अपने स्कूल को किसी भी कीमत पर उस जगह के सबसे अव्वल दर्जे का स्कूल बनाना चाहते हैं। लिहाज़ा सभी ईमानदार, ज्ञानवान और सम्मानीय शिक्षकों की छंटनी शुरू होती है, क्योंकि अब स्कूल को स्मार्ट टीचर चाहिए। इतना ही नहीं, स्कूल के बच्चों की फीस बढ़ा दी जाती है, उसी स्कूल में पढ़ने वाले शिक्षकों के बच्चों से भी फीस वसूल की जाती है। तो लिहाज़ा सब दुखी हैं। स्कूल की नई प्राचार्या कामिनी गुप्ता की दूषित मानसिकता और खराब व्यवहार के कारण उस स्कूल की बहुत अनुभवी शिक्षिका विद्या सावंत को दिल का दौरा आ जाता है और वे अस्पताल में भर्ती हो जाती हैं। इस पूरे प्रक्रम में उसी स्कूल की तेज़, चतुर और संवेदनशील शिक्षिका

ज्योति के हस्तक्षेप से विद्या सावंत का इलाज हो पाता है और स्कूल वापसी भी। यह फ़िल्म स्कूलों के बीच लगती होड़ के कारण होने वाली क्षति को तो दर्शाती ही है लेकिन साथ ही इस ओर भी संकेत करती है कि विलायत से पढ़ा उद्योगपति का बेटा, जिसके पास एजुकेशन की कोई पढ़ाई, डिग्री, अनुभव नहीं है, वह शिक्षकों से भी ऊपर है, आखिर वह स्कूल का मालिक है... और शिक्षक महज 'एक नौकरी करने वाला है'। यह एक कठोर वास्तविकता है कि बहुधा शिक्षकों की स्वयं की पढ़ाई, अनुभव और विद्वत्ता को एक सिरे से खारिज कर दिया जाता है। यह शिक्षकों का अपमान ही तो है तथा यह अपमान रोज होता है और षड्यंत्रों के तहत होता है। शिक्षकों को इतना परेशान कर दिया जाए कि वे स्वयं ही नौकरी छोड़कर चले जाएँ।

आज फ़िल्म वही है, घटनाएँ वही हैं, लेकिन किरदार बदल गए हैं। आज स्कूल एक बहुत बड़ा व्यवसाय या उद्योग बन गया है। जिसके पास पैसा है, वह कोई बिजनेस खोलना चाहता है तो वह स्कूल खोल लेता है। फिर स्कूलों के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है। एक-दूसरे से बेहतर दिखाने के लिए मीडिया का सहारा लिया जाता है। आज सोशल मीडिया समाज की तमाम तरह की व्यवस्थाओं पर हावी है। शिक्षा भी उससे अछूती नहीं है। सोशल मीडिया ने शिक्षकों के अजीबो-गरीब कारनामों को तो पूरी शिद्दत से समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं लेकिन उनकी तकलीफ और प्राइवेट स्कूलों की मनमानी, भ्रष्टाचार को समाज के समक्ष नहीं रखते। इस फ़िल्म में सोशल मीडिया का नकारात्मक और सकारात्मक स्वरूप एक साथ देखने को मिलता है। विद्या सावंत को द्रोणाचार्य के रूप में और उनके विद्यार्थियों को अर्जुन के रूप में स्थापित

करके एक गुरु के लिए सहायता जुटाई जाती है। ये ऐसे क्षण हैं जो शिक्षक ने अपने शिक्षकत्व से कमाए हैं। यह शिक्षकत्व भी इतना सरल नहीं है, बरसों की तपस्या है। फ़िल्म जिस तरफ संकेत करती है और जो स्थितियाँ हैं उसने भी शिक्षकों को बदहाल कर रखा है। कोविड-19 वैश्विक महामारी के कारण लॉकडाउन लगा और स्कूल भी बंद हो गए हैं। लेकिन स्कूल ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से संचालित होने लगे हैं। अब बच्चे स्कूल में नहीं अपने घरों में हैं, तो फीस भी पूरी क्यों देंगे? फीस नहीं है तो शिक्षकों को वेतन कैसे देंगे? आधा वेतन देकर पूरा काम करवाएँगे। अब कक्षा ऑनलाइन है तो शिक्षक भी उतनी संख्या में नहीं चाहिए तो शिक्षकों की छंटाई भी शुरू हो गई। फ़िल्मी स्कूल में शिक्षकों की छंटाई जिस तरह होती है उससे और भी बुरी तरह इन प्राइवेट स्कूलों में शिक्षकों की छंटाई होती है।

चॉक एन डस्टर फ़िल्म कई सवाल खड़े करती है। अच्छा स्कूल कैसा होता है? अच्छे शिक्षक कैसे होते हैं? अच्छा विद्यालय-प्रबंधन कैसा होता है? भ्रष्टाचार किस तरह से शिक्षा की जड़ें काट रहा है? कुल मिलाकर शिक्षा-व्यवस्था पर प्रहार करती फ़िल्म आशा की किरण को प्रस्फुटित करती है और यह समझाती है कि भ्रष्टाचार व्यक्ति करता है और इस भ्रष्टाचार को समाप्त करने में व्यक्ति की ही भूमिका सर्वाधिक है। अकसर हमारे समस्त निर्णयों को हमारा आर्थिक पक्ष नियंत्रित करता है और सत्य, न्याय के मार्ग पर प्रशस्त व्यक्ति उल्टे पैर लौट चलता है, क्योंकि सत्य, न्याय के मार्ग पर धन तो जाएगा ही, प्रतिष्ठा एवं पद चला जाएगा और दो वक्त के भोजन का इंतजाम कैसे होगा? परिवार कैसे चलेगा? यही

समस्या फिल्म में शिक्षिका विद्या सावंत के सामने थी जिसके पति व्हीलचेयर पर हैं और घर उनके वेतन से ही चलता है। आज भी अनेक शिक्षकों के सामने यही यक्ष प्रश्न खड़ा होता है कि अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई तो उनकी ही आवाज़ को खामोश कर दिया जाएगा। इतना सरल नहीं है यह सब, लेकिन असंभव भी नहीं है और यही घोषित करता है फिल्म का अंत। विद्या सावंत और ज्योति की फिर से स्कूल वापसी होती है और फिर उनके हाथ आता है— चॉक एंड डस्टर।

चॉक एंड डस्टर का डिजिटल विभेद

किसी भी स्कूल, कक्षा में चॉक एंड डस्टर सहज भाव से प्राप्त साधन है जो सीखने-सिखाने में काम आता है। इस अर्थ में चॉक एंड डस्टर एक साधन मात्र है, साध्य नहीं, लेकिन अगर कोविड-19 महामारी के दौरान आपके पास कोई डिजिटल साधन न हो तो आपका सीखना कहीं-न कहीं बाधित होता है। इस महामारी के समय मोबाइल, लैपटॉप, कंप्यूटर आदि साधन न हो तो आप ऑनलाइन कक्षाओं में कैसे जुड़ पाएँगे? पता नहीं। बस, यहीं से विभेद प्रारंभ होता है और इस विभेद की खाई बहुत गहरी होती जाती है। कोविड-19 ने पूरी दुनिया में जिस तरह का माहौल पैदा किया है उससे दुनिया के बच्चे भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हुए हैं। लेकिन सभी देश अपने-अपने तरीके से इस महामारी से निपटने का कार्य कुशलता से कर रहे हैं। कोविड-19 के कारण देश के स्कूल बंद हैं ताकि बच्चे घर पर रह कर ही सुरक्षित रूप से अपनी पढ़ाई कर सकें। लॉकडाउन के समय में भारत सरकार ने विद्यालय जाने वाले बच्चों के सीखने के लिए शैक्षणिक वैकल्पिक कैलेंडर जारी किए हैं।

लेकिन गाँव और जनजातीय या आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा पर मुखर आवाज़ सुनना शेष है। कोशिश की जा रही है की इन तक भी अपनी पहुँच बनाई जाए।

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार 10.43 करोड़ जनसंख्या जनजातीय है *एजुकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट अ ग्लान्स, 2018* भारत सरकार के अनुसार अनुसूचित जनजाति के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या 2,53,68,000 है। ये बच्चे कक्षा 1 से 12 तक (6-17 वर्ष) के हैं जबकि भारत में इस उम्र के कुल 26,05,97,000 स्कूल में पढ़ते हैं। इसका मतलब यह है कि लगभग 26 करोड़ बच्चों में से लगभग 2 करोड़ बच्चे इन तमाम तरह की ऑनलाइन सुविधाओं से वंचित होंगे। हाँ, सारे बच्चे नहीं लेकिन फिर भी अधिकांश बच्चे इन सुविधाओं का उपयोग नहीं कर पाते होंगे क्योंकि 10.43 करोड़ अनुसूचित जनजाति के लोगों में से केवल 10.43 प्रतिशत ही शहरी क्षेत्रों में रहते हैं यानी 89.97 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। भारतीय जनगणना 2011 के आँकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जनजाति के 33.6 प्रतिशत लोगों को पीने तक का पानी लेने के दूर जाना पड़ता है और लगभग 26.6 प्रतिशत लोग नदी, तालाब, झील, खुले हुए कुओं या अन्य स्रोतों से पीने का पानी लेते हैं। केवल 51.7 प्रतिशत लोगों को बिजली की सुविधा प्राप्त है जबकि अन्य लोग केरोसिन तेल या अन्य साधनों पर निर्भर रहते हैं। अब हम मुद्दे के और भी नजदीक पहुँचते हैं तथा यह जानते हैं कि भारत सरकार ने बच्चों के लिए ऑनलाइन कक्षाओं का आयोजन किया है उसके लिए इन लोगों के पास कोई उपकरण

है भी नहीं। केवल 31.1 प्रतिशत लोगों के पास मोबाइल की सुविधा है, वह भी स्मार्ट फ़ोन हो, यह सुनिश्चित नहीं है। लैंडलाइन और मोबाइल—दोनों की सुविधा वाले कुल 1.8 प्रतिशत लोग हैं। टेलीविज़न केवल 21.9 प्रतिशत लोगों के पास है और कंप्यूटर या लैपटॉप केवल 4.4 प्रतिशत लोगों के पास है। इससे भी ज़्यादा चौंकाने वाले आँकड़े यह हैं कि 37.3 प्रतिशत लोगों के पास इनमें से किसी भी प्रकार की कोई सुविधा नहीं है। अब क्या करेंगे ये बच्चे?

एक और बात संज्ञान में हो कि ऑनलाइन या मीडिया के माध्यम से सीखने के लिए माता-पिता के सहयोग की भी अपेक्षा की गई है। इसका मतलब यह है कि माता-पिता बच्चों को शैक्षणिक वैकल्पिक कैलेंडर में दिए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार सिखा पाएँगे और बच्चे के सीखने में मदद करेंगे। ये दिशा-निर्देश भी समाज के केवल एक ही वर्ग को संबोधित करते हैं। उन बच्चों का क्या जिनके माता-पिता निरक्षर हैं? या फिर वे आज की पढ़ाई-लिखाई से परिचित नहीं हैं, या फिर वे इस लॉकडाउन में दो वक्त की रोटी का प्रबंध करने में चिंतित रहते हैं, या काम और भोजन की तलाश में रहते हैं। अनुसूचित जनजाति के लोगों की साक्षरता दर 58.96 प्रतिशत है जबकि भारत की साक्षरता दर 72.99 प्रतिशत है। लगभग 47 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं और प्राथमिक स्तर तक पढ़े लिखे लोग 24.2 प्रतिशत हैं और माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई-लिखाई करने वाले केवल 14.3 प्रतिशत लोग हैं। माध्यमिक का आँकड़ा 8.4 प्रतिशत है और उच्च माध्यमिक का आँकड़ा 4.2 प्रतिशत है तथा किसी तरह का डिप्लोमा, सर्टिफिकेट वाले लोग

केवल 0.4 प्रतिशत हैं और स्नातक का प्रतिशत 1.6 है। अब आप स्वयं तय कीजिए कि कितने माता-पिता अपने बच्चों के पढ़ने-लिखने में मदद कर सकेंगे? हम ग्रामीण क्षेत्रों को भी जितना सरल समझ रहे हैं, वे दरअसल उतने सरल नहीं हैं। शहर के ग्रामीण क्षेत्र और आदिवासी क्षेत्रों में ज़मीन-आसमान का अंतर है। मीलों बीहड़ जंगल और दूर-दूर तक कोई बस्ती भी नहीं। सोचिए, ऐसे हालातों में रहने वाले लोग कहाँ, कैसे और कितना अपने बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान दे पाएँगे? वे तो स्कूल के अध्यापक पर ही निर्भर थे और अब अध्यापक भी खुद लॉकडाउन के कारण घर से निकल नहीं पा रहे हैं। भारत जैसे विविधता भरे देश में एक 'दिशा-निर्देश' से सभी को दिशा नहीं मिल पाएगी। ज़रूरत इस बात की है कि सभी राज्य अपने भूगोल, समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए दिशा-निर्देश तय करें ताकि सभी बच्चों को उसका लाभ मिल सके। अतः सभी को मिलकर अपने-अपने हिस्से के दायित्व पूरे करने होंगे और यह सोचना होगा कि इन आदिवासी बच्चों तक शिक्षा की पहुँच कैसे बनाई जाए। यह अवसर अपनी शिक्षा की व्यवस्था और उसके तौर-तरीकों की बारे में विचार करने और उन तौर-तरीकों को ठीक करने का है। जो लोग दुर्गम इलाकों में रहते हैं उन तक 'नेटवर्क' का मिलना भी समस्या है। सोचिए, बच्चे कहाँ खड़े होंगे? और कैसे नेटवर्क से जुड़ पाएँगे इन स्थितियों को देखकर यही समझ में आता है कि समावेशी शिक्षा की केवल बात करने के कारण कहीं इस देश के बहुत सारे बच्चों को इस शिक्षा व्यवस्था से बाहर खदेड़ते तो नहीं चले जा रहे? शिक्षा और शिक्षा की व्यवस्था पर पुनर्विचार अत्यंत आवश्यक है।

बात चाहे चॉक एंड डस्टर की उपलब्धता की हो या चॉक एन डस्टर सिनेमा की हो दोनों ही जीवन का कठोर यथार्थ व्यक्त करते हैं। सिनेमा भी एक प्रभावी माध्यम है जो सीधे-सीधे और बहुत पैसे तरीके से अपनी बात कहता है और एक बड़ा गहरा संदेश छोड़ता है। जैसा कि ज्ञात है कि फ़िल्म में विद्या सावंत और ज्योति की फिर से स्कूल वापसी होती है और फिर उनके हाथ आता है — चॉक एंड डस्टर। असल ज़िंदगी में यह मुश्किल तो लगता है, कभी-कभी असंभव

भी लगता है... लेकिन फ़िल्मों की कहानियाँ आपके-हमारे असल जीवन से ही कुछ घटनाएँ उधार लेती हैं। ठीक वैसे ही जैसे उसने चॉक एंड डस्टर लिया और बना दी — चॉक एन डस्टर। साथ ही आदिवासी जनजातीय बच्चों के चॉक एंड डस्टर के समुचित प्रबंध पर भी गहराई से विचार किया जाना चाहिए। अंततः शिक्षा का अधिकार हर बच्चे का मौलिक अधिकार है... आदिवासी जनजातीय बच्चों का भी। कभी इनके पैमाने से भी दुनिया को देखा जाना चाहिए।

संदर्भ

आप्टे, वामन शिवराम. 1969. *संस्कृत-हिंदी कोश*, मोतीलाल बनारसी दास, पटना
एजुकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, 2018, भारत सरकार
चॉक एन डस्टर (फ़िल्म) 2019. <https://youtu.be/xTeK0Nymd14> पर देखा गया।